

तीर्थकर भगवान महावीर

एक तो आत्मसाधनारत वीतरागी संतों के ज्ञान में अन्तरोन्मुखी वृत्ति के कारण बाह्य अनुकूल-प्रतिकूल संयोग आते ही नहीं; यदि आते भी है तो उनके चित्त में कोई भंवर पैदा नहीं करते, मात्र ज्ञान का ज्ञेय बनकर रह जाते हैं; क्योंकि वे तो अपनी और पर की परिणती को जानते-देखते हुए प्रवर्तते हैं।

मुनिराज महावीर की अनेक संकटों के बीच भी निर्विकार सौम्याकृति और वीतरागी मुद्रा व अड़िग साधना देख स्थाणुरद्र का क्रोध काफूर हो गया। वह भय मिश्रित आश्चर्य से विह्वल हो उनकी स्तुति करने लगा, अपने किये पर पछताने लगा।

न काहू से दोस्ती न काहू से बैर के प्रतीक मुनिराज महावीर पर इस परिवर्तन का भी कोई असर नहीं हुआ। वे तो अपने में ही मग्न थे। वे अपने अनुरूप क्रिया कर रहे थे और स्थाणुरद्र भी अपने अनुरूप क्रिया कर रहा था। उससे उन्हें क्या लेना देना था ?

प्रत्येक द्रव्य की पूर्ण स्वतंत्र सत्ता है, उसका भला-बुरा परिणमन उसके आधीन है, उसमें पर का कोई भी हस्तक्षेप नहीं है तथा जिसप्रकार आत्मा अपने स्वभाव का कर्ता-भोक्ता स्वतंत्ररूप से है; उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा अपने विकार का कर्ता-भोक्ता भी स्वयं है। इस रहस्य को गहराई से जाननेवाले महावीर उससे सर्वथा निरीह ही रहे।

इसप्रकार मुनिराज महावीर निरन्तर वीतरागता की वृद्धिगत दशा को प्राप्त करते जा रहे थे। अन्तर्बाह्य घोर तपश्चरण करते हुये उन्हें 12 वर्ष व्यतीत हो गये। 42 वर्ष की अवस्था में एक दिन वे जृम्भिका ग्राम के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में पहुँचे। वहाँ पर शाल वृक्ष के नीचे रत्नों के समान दैदीप्यमान शिलापर प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो, ध्यानस्थ हो गये।

वह बैसाख शुक्ला दशमी का दिन और शाम का समय था। हस्त और उत्तर नक्षत्र के मध्य भाग में चन्द्रमा आ गया था। उस समय उन्होंने आत्मा के आश्रय से परिणामों की अत्यन्त शुद्धदशा की उपलब्धि की। अत्यन्त उग्र पुरुषार्थ के द्वारा अप्रतिपाती क्षपकश्रेणी का आरोहणकर वे शुक्लध्यानस्थ हो गये। आत्मनिमग्नता की अत्यन्त उग्रतमदशा के द्वारा अन्तर में विद्यमान सूक्ष्म राग का भी अभावकर उन्होंने पूर्ण वीतरागदशा प्राप्त कर ली। पूर्ण वीतरागता प्राप्त होते ही अनन्तर समय में उन्हें पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त हो गया। अब वे पूर्ण वीतरागी, सर्वज्ञ हो गये थे; अतः भगवान कहलाये। मोह-राग-द्वेषरूपी शत्रुओं को पूर्णतः जीत लेने से वे सच्चे महावीर बने।

— तीर्थकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ : 59-60

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 22

262

अंक : 10

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

द्रव्यविशेष प्रज्ञापन अधिकार

द्रव्य जीव अजीव हैं जिय चेतना उपयोगमय।
पुद्गलादी अचेतन हैं अतःएव अजीव हैं॥१२७॥
आकाश में जो भाग पुद्गल जीव धर्म अधर्म से।
अर काल से समृद्ध है वह लोक शेष अलोक है॥१२८॥
जीव अर पुद्गलमयी इस लोक में परिणमन से।
भेद से संघात से उत्पाद-व्यय-ध्रुवभाव हों॥१२९॥
जिन चिह्नों से द्रव ज्ञात हों रे जीव और अजीव में।
वे मूर्त और अमूर्त गुण हैं अतद्भावी द्रव्य से॥१३०॥
इन्द्रियों से ग्राह्य बहुविधि मूर्त गुण पुद्गलमयी।
अमूर्त हैं जो द्रव्य उनके गुण अमूर्तिक जानना॥१३१॥
सूक्ष्म से पृथ्वी तलक सब पुद्गलों में जो रहें।
स्पर्श रस गंध वर्ण गुण अर शब्द सब पर्याय हैं॥१३२॥
आकाश का अवगाह धर्माधर्म के गमनागमन।
स्थानकारणता कहे ये सभी जिनवरदेव ने॥१३३॥

ह्र डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

पर संबंध ही दुःख का कारण

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 28 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है

दुःखसन्दोह भागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।

त्यजात्म्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥28 ॥

इस संसार में देहादिक के संयोग से प्राणियों को दुःखसमूह भोगना पड़ता है अर्थात् अनंतदुःख भोगना पड़ता है; इसलिये उन समस्त संबंधों को मैं मन-वचन-कायपूर्वक त्यागता हूँ।

(गतांक से आगे...)

इष्टोपदेश शास्त्र में 28 वीं गाथा चल रही है। यहाँ शिष्य का प्रश्न है कि धर्मी जीव अपनी आत्मा को किसप्रकार जानता और वेदता है ?

इसके उत्तरस्वरूप आचार्यदेव कहते हैं कि धर्मी जीव द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से अपनी आत्मा को एकस्वरूप कायम रहनेवाला जानता है; क्योंकि भूत और भविष्य की पर्याय में एकरूप रहनेवाला आत्मद्रव्य एक, ध्रुव, सदृशद्रव्य है।

देहादि परपदार्थ और पुण्य-पापादि भावरूप परद्रव्य मेरे और मैं उनका हूँ हूँ ऐसा मिथ्या अभिप्राय ज्ञानीजनों के नहीं है, वे तो अपने को निर्ममस्वरूप ही जानते हैं। अज्ञानी जीव अपने को राग-द्वेषादि से सहित और ज्ञान-दर्शनादि स्वभाव से रहित मानता है। वह अपने त्रिकालशुद्ध निजस्वभाव को भूलकर क्षण-क्षण अवस्थारूप राग-द्वेष वाला मानता है; किन्तु ज्ञानी जीव शरीर, जड़कर्म, राग-द्वेषादि से भिन्न अपने को स्व-स्वभावमय मानता है।

यद्यपि धर्मी जीव जानता है कि पर्याय में मेरा भावकर्म के साथ संबंध है, द्रव्यकर्म और नोकर्म के साथ भी निमित्त-नैमित्तिक संबंध है; किन्तु द्रव्यदृष्टि से मैं इन सभी से भिन्न त्रिकाल एक शुद्ध, निर्मम हूँ हूँ इसप्रकार धर्मी जीव की दृष्टि एकमात्र द्रव्यस्वभाव पर ही होती है।



धर्मी जीव जानता है कि मैं स्वपरप्रकाशक स्वभावी हूँ, प्रत्येक द्रव्य को जाननेवाला हूँ; किन्तु किसी परद्रव्य का कार्य करनेवाला नहीं हूँ। देखो ! धर्मी जीव की दृष्टि में शरीर, मन, स्त्री, पुत्र, ग्राम, नगरादि में कोई किसी को कुछ देनेलायक या मदद करनेलायक नहीं है।

प्रश्न : किन्तु एक जीव अन्य जीव को मदद करता हुआ देखने में आता है ?

उत्तर : कोई जीव किसी को किसीप्रकार की मदद नहीं कर सकता। अज्ञानी जीव को ऐसा लगता है कि हूँ मैं परिवार, देश, दुकान आदि का कितना ध्यान रखता हूँ, लेकिन अज्ञानी की यह मान्यता विपरीत है। तीनलोक और तीनकाल में कोई किसी का कुछ नहीं कर सकता। मैं तो सब द्रव्यों का मात्र ज्ञाता-दृष्टा हूँ, किसी का कुछ करना-धरना मेरा स्वभाव ही नहीं है। भगवान ने ऐसा ही कहा है और धर्मी जीव भी ऐसा ही जानते हैं; किन्तु अज्ञानी अपनी विपरीत मान्यता के बल से परद्रव्य का कर्ता बना रहता है।

ज्ञानी ऐसा जानता है कि मेरा आत्मा भी केवली भगवान की तरह अनंत पर्यायों द्वारा जानने योग्य है और शुद्ध उपयोगरूप श्रुतकेवलियों द्वारा भी स्वसंवेद्य है। मैं भी अपने श्रुतज्ञान द्वारा शुद्ध उपयोगरूप जाननेयोग्य हूँ। शरीर, कर्म, विकारादि सहित आत्मा का मैं वेदन नहीं कर सकता।

जगत को दया-दान, व्रत-भक्ति क्रिया करनेवाला व्यक्ति धर्मी प्रतीत होता है; किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा परपदार्थों का ग्रहण-त्याग भी नहीं कर सकता और दया-दान के विकल्पों को भी नहीं कर सकता।

आचार्य पूज्यपादस्वामी आत्मा का स्वरूप बताते हुये कहते हैं कि द्रव्यस्वरूप की अपेक्षा विचार करें तो यह अनंत पर्यायों में त्रिकाल रहनेवाला एक है।

शरीर, रागादि मेरे और मैं उनका हूँ ऐसे विपरीत अभिप्राय से मैं सर्वथा भिन्न हूँ, निर्मम हूँ। शुद्धनय की दृष्टि से जड़कर्म और विकारी परिणामों से मैं पूर्ण मुक्त तथा स्व-परप्रकाशकस्वभावी हूँ। मैं केवलज्ञानियों द्वारा पूर्ण अनंत पर्यायोंसहित वेदनेयोग्य तथा श्रुतज्ञानियों द्वारा शुद्ध उपयोगरूप वेदनेयोग्य हूँ।

अहाहा.... ! एक ही गाथा में इतना सार भर दिया है। इतने विशेषणोंपूर्वक



आत्मा का स्वरूप जाहिर किया है कि तू अपना कल्याण कर सके; अतः हे भव्य ! तू उसको गहराई से पहचान ले। जिज्ञासु जीवों को एक यही बात करनेयोग्य है, बाकी सब व्यर्थ है। संकल्प-विकल्पों को जानने में जिज्ञासु जीव कभी नहीं फंसता है।

शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, दुकान आदि सर्वथा सर्वप्रकार से मुझसे भिन्न हैं। सर्वथा अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि सब दृष्टि से मुझसे भिन्न है हूँ ऐसा ज्ञानी जीव जानते हैं।

इस गाथा में यही कहा है कि देहादि परद्रव्यों के संबंध से यह जीव दुःखी है। अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को छोड़कर जड़कर्मों का निमित्त पाकर जब यह जीव परद्रव्यों के साथ संबंध स्थापित करता है, तभी इसे आकुलता और दुःख होता है।

आत्मा अनाकुल शांतरस का आनन्दकन्द है, उसका लक्ष करने से आनन्द का वेदन होता है और उसका लक्ष न करके परसंयोगों की ओर लक्ष करने से जीव को चार गतिरूप दुःख भोगना पड़ता है।

ज्ञानी यही विचारता है कि मन-वचन-काय और योग के निमित्त से मेरा परद्रव्यों के साथ संबंध स्थापित होता है; अतः स्वभाव के साथ संबंध जोड़कर मैं उन परसंबंधों को मन-वचन-काय पूर्वक छोड़ता हूँ।

भाई ! यह तो समस्त दुनिया से भिन्न जाति का मार्ग है। तभी तो ज्ञानी जीव कहते हैं कि देव-शास्त्र-गुरु का संबंध भी आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है।

प्रश्न : यह बात कुछ जचती नहीं है।

उत्तर : जचती क्यों नहीं है ? देव-शास्त्र-गुरु भी परद्रव्य है न ! अतः उनकी ओर का लक्ष्य भी पुण्य का ही कारण है, आकुलता का ही कारण है।

“मैं मन-वचन-काय पूर्वक परसंग को छोड़ता हूँ” हूँ ऐसा कहने का आशय यह है कि मन-वचन-काय के अवलम्बन से चंचल हुए आत्मप्रदेशों के भावों को रोकता हूँ अर्थात् मेरे अंकप स्वभाव से विरुद्ध चंचल भावों को रोककर स्वभाव की तरफ ही झुकता हूँ।

हे जीवों ! यह इष्ट-उपदेश है। परपदार्थ का संबंध छोड़कर स्वभाव के साथ संबंध जोड़ना ही आत्मा के लिये हितकर है, यही इष्ट-उपदेश है। परसंबंध से लाभ मानना तो अहितकर-अनिष्ट उपदेश है।

आगम क्या है ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की आठवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म-रसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

तस्स मुहुग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥४॥
पूर्वोक्त परमात्मा के मुख से निकली हुई पूर्वापर विरोध रहित, तत्त्वार्थों का कथन करनेवाली शुद्धवाणी को आगम कहा गया है।

(गतांक से आगे ...)

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित परमागम मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है। जीव ने मोक्ष को कभी देखा नहीं है, उस मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी आगम है। जो सीढ़ी पर चढ़े, उसे मोक्ष हुये बिना नहीं रहे। वीतराग की वाणी बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता; इसलिये इस परमागम को मोक्ष की प्रथम सीढ़ी कहा है।

वह परमागम काम-भोग से उत्पन्न होनेवाले अप्रशस्त रागरूप अंगारों से जलते हुये समस्त दीनजनों के महाक्लेश को नाश करने में समर्थ सजल मेघ है। यहाँ अंगारा शब्द का प्रयोग किसी भी परपदार्थ के कर्ता-भोक्तापने के भावरूप में किया गया है। इन अंगारों में अज्ञानी दीनजन अनादि से जल रहे हैं। विषय-भोगों में सुख नहीं है, वे तो अंगारे हैं, उनमें तो महाक्लेश है। पर की इच्छा या पर के भोगने की इच्छा करके अज्ञानीजन दीन होकर अप्रशस्त रागरूप अंगारों में जल रहे हैं। जैसे शकरकन्द अग्नि में भूनी जाती है; उसीप्रकार अज्ञानीजीव कामवासना में दीन बनकर भुन रहे हैं। जिनको चैतन्य का भान नहीं है, वे रागरूपी अंगारों में भुन रहे हैं। ऐसे जीवों के महाक्लेश का नाश करने के लिये वीतराग की वाणी सजल मेघ के समान है।

वीतराग की वाणी महाक्लेश का नाश करने के लिये जलपूर्ण बादलों के

समान है; जगत के क्लेश का नाश करने के लिये वीतराग की वाणी कभी निष्फल नहीं जाती। जो जीव उस वाणी को झेल ले, उसके समस्त दुःख विलीन हो जाते हैं; इसप्रकार यहाँ उपादान-निमित्त की संधि बतलाई है।

जिसप्रकार कहीं आग लग जाये तो अग्निशामक-यंत्र उसे बुझा देता है; उसीप्रकार दीनजनों के महाक्लेश को वीतराग की वाणी दूर कर देती है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी काम-भोग के अप्रशस्त रागरूप अंगारों में दीन होकर दहक रहे हैं; परन्तु जो जीव वीतराग की वाणी का आश्रय करते हैं, उन जीवों के महाक्लेश को वह वाणी नष्ट कर देती है। इसतरह क्लेश को नष्ट करने में भगवान की वाणी जलपूर्ण मेघ के समान है।

भगवान की ऐसी वाणी को परमागम कहते हैं। उस परमागम में सात तत्त्व तथा नवपदार्थ का सच्चा स्वरूप कहा है। देखो ! जगत में सात तत्त्व हैं, इससे विरुद्ध कोई एक ही तत्त्व माने अथवा 25 माने तो यथार्थ नहीं है। सात तत्त्वों अथवा नव पदार्थों में सम्पूर्ण जगत आ जाता है, सर्वज्ञ की वाणी उन सबका कथन करनेवाली है। ऐसे सर्वज्ञ को, उनकी वाणी को और उनके कहे हुये तत्त्वों को पहिचानना चाहिये; क्योंकि उनकी पहिचान के बिना धर्म नहीं होता।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी भी रत्नकरण्डश्रावकाचार में इसीप्रकार कहते हैं

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं बिना च विपरीतात् ।
निस्संदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

जो न्यूनतारहित, अधिकतारहित, विपरीततारहित, यथातथ्य वस्तुस्वरूप को निस्संदेहरूप से जानता है, उसे आगमवेत्ताज्ञान (सम्यग्ज्ञान) कहते हैं।

जैसा वस्तुस्वरूप है वह उससे कम न कहे, अधिक न कहे, विपरीत भी न कहे; ऐसी तो वीतराग की वाणी ही है और उस आगम के ज्ञाता वस्तुस्वरूप को हीनाधिक एवं विपरीततारहित जानते हैं, उसी को आगमवेत्ता ज्ञान कहते हैं। आगम और ज्ञान वह ये दोनों हीनता-अधिकता तथा विपरीततारहित होते हैं।

सम्यग्ज्ञान का माप बाहर की सभा के अनुसार नहीं होता। लाखों मनुष्यों की सभा में उच्चस्वर से भाषण देना ज्ञानी का लक्षण नहीं है, इससे ज्ञानी का माप नहीं

होता; अपितु वस्तुस्वरूप जैसा वीतराग की वाणी में आया है, वैसा ही जो ज्ञान जानता है, उसी को आगमज्ञाता सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सैंकड़ों-हजारों अवधान करना सम्यग्ज्ञान का लक्षण नहीं है। चैतन्यस्वभाव तथा दूसरे तत्त्व जिसप्रकार से आगम में सर्वज्ञ ने कहे हैं; उसीप्रकार हीनाधिकता एवं विपरीततारहित जो जानता है, उसी को ज्ञानीजन सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यहाँ आगम की पहिचान तथा उस आगम से होनेवाला ज्ञान कैसा होता है, इसकी भी पहिचान करवाई; फिर वस्तुस्वरूप में संदेह न हो, निस्संदेहपने वस्तुस्वरूप को जाने; वही सम्यग्ज्ञान है।

यह नियमसार है, नियम अर्थात् मोक्षमार्ग उसमें सार शब्द लगाया अर्थात् शुद्ध निश्चयरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग ही नियमसार है। उसमें निश्चयश्रद्धा-ज्ञान के साथ जो देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का शुभराग होता है, उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

अरहंतदेव, परमागम और तत्त्वों की श्रद्धा व्यवहारसम्यक्त्व है ह्व उसी का यह वर्णन चल रहा है। अरहंत देव अठारह दोषरहित और केवलज्ञानादि सहित होते हैं, उनका वर्णन पूर्व में किया था। यहाँ अरहंतदेव की वाणीरूप आगम तथा उसमें निरूपित जीवादि तत्त्वों का कथन किया है ह्व ऐसे आप, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा शुभराग है, व्यवहारसम्यक्त्व है। यह शुभराग भी साधक को प्रथम अवस्था में आता ही है। कुदेवादि की मान्यता में तीव्रकषाय है ह्व ऐसी मान्यतावाले तीव्रकषायी जीवों में तो आत्मा की श्रद्धा की पात्रता भी नहीं होती।

वीतराग सर्वज्ञ देव के अतिरिक्त अन्य कुदेवादि सच्चे देव नहीं है। ऐसे आप, आगम और तत्त्वश्रद्धा को व्यवहारसम्यक्त्व भी तभी कहा जा सकता है, जब राग रहित चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन लेकर उसकी श्रद्धा करे। निश्चयश्रद्धा में तो अकेले चैतन्य का ही अवलम्बन होता है; परन्तु निचलीदशा की उस भूमिका में साथ ही देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का शुभराग भी होता है, उसे व्यवहारश्रद्धा कहते हैं।

सर्वज्ञ परमात्मा कैसे होते हैं ? यह बात परीक्षणीय है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य कुदेवादिक सच्चे नहीं है, उनकी वाणी सच्ची नहीं है और उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्व भी सच्चे नहीं है। प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है, परिपूर्ण है, चैतन्यसूर्य है; उसमें सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति भरी है ह्व ऐसा कथन करनेवाला सर्वज्ञ ही होता है।



अन्य कोई भी ऐसा कथन नहीं कर सकता।

वीतराग की श्रद्धा करने में होनेवाला राग व्यवहार है, वह नियमसार नहीं है। नियमसार तो चैतन्य कारणपरमात्मा की निश्चयश्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का नाम है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की व्यवहारश्रद्धा भी वास्तव में नियमसार नहीं है तो फिर कुदेवादि की श्रद्धा की तो बात ही कहाँ है ?

देव-शास्त्र-गुरु से भिन्न अपना स्वभाव जानकर उसकी श्रद्धा करे तो उस राग को व्यवहारश्रद्धा कहते हैं; किन्तु यदि उस शुभराग से धर्म माने तो वह व्यवहार भी नहीं है। एक समय में परिपूर्ण चैतन्य भगवान तू स्वयं है। इसके स्वीकारपूर्वक बीच में देव-शास्त्र-गुरु का शुभराग आवे; परन्तु उसको धर्म न माने तो उसे व्यवहार कहते हैं। जब राग से धर्म न माने तभी राग को व्यवहार कहा जाता है। मोक्षमार्ग तो चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से ही है। त्रिकाल में परमार्थ का पंथ तो एक ही होता है, बीच में व्यवहार आता है, वह परमार्थ से मोक्षमार्ग नहीं है। यहाँ नियमसार कहकर शुद्धरत्नत्रय बतलाया है तथा यह भी बतलाया है कि व्यवहाररत्नत्रय वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। (क्रमशः)

जिनागम का सार

भाई ! जो व्यक्ति अपनी वाणी का सदुपयोग करता है, समाज उसका सम्मान करता है और जो दुरुपयोग करता है, उसकी उपेक्षा या अपमान। इसप्रकार सम्मान के लोभ से एवं उपेक्षा या अपमान के भय से हम बहुतकुछ अपनी वाणी पर भी संयम रखते हैं; पर यदि मैं अभी यहीं बैठे-बैठे आप सबको गालियां देने लगूँ तो मेरा क्या कर लेगा समाज और क्या कर लेगी सरकार ?

यही कारण है कि भगवान महावीर ने कहा कि न जहाँ सरकार का प्रवेश है और न जहाँ समाज की चलती है, धर्म का काम वहाँ से आरंभ होता है; अतः उन्होंने ठीक ही कहा है कि आत्मा में रागादि की उत्पत्ति ही हिंसा है और आत्मा में रागादि की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है ह्व यही जिनागम का सार है।

ह्व गागर में सागर, पृष्ठ-78

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

अब टीकाकार आचार्यदेव अन्तिम मंगल के अर्थ 275 वें काव्य में चिच्चमत्कार को ही सर्वोत्कृष्ट बताते हैं -

(मालिनी)

जयति सहजतेजः पुंजमज्जत्रिलोकी-

स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः ।

स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलंभः

प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥

(सोरठा)

झलके तीनों लोक सहज तेज के पुंज में।

यद्यपि एक स्वरूप तदपी भेद दिखाई दे ॥

सहज तत्त्व उपलब्धि निजरस के विस्तार से।

नियत ज्योति चैतन्य चमत्कार जयवंत है ॥

अपनेस्वभावरूप सहज तेजपुंज में त्रिलोक के पदार्थ मग्न हो जाते हैं; इसलिये जिसमें अनेक भेद होते हुये दिखाई देते हैं; तथापि जिसका एक ही स्वरूप है अर्थात् केवलज्ञान में सर्व पदार्थ झलकते हैं, इसलिये जो अनेक ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है; तथापि जो चैतन्यरूप ज्ञानाकार की दृष्टि में एकस्वरूप ही है, जिसमें निजरस के विस्तार से पूर्ण अच्छिन्न तत्त्वोपलब्धि है अर्थात् प्रतिपक्षी कर्म का अभाव हो जाने से जिसमें स्वरूपानुभव का अभाव नहीं होता और जिसकी ज्योति अत्यंत नियमित है अर्थात् जो अनंत वीर्य से निष्कंप रहता है वह ऐसा यह

प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यचमत्कार जयवंत वर्तता है अर्थात् किसी से बाधित नहीं किया जा सकता वह ऐसा सर्वोत्कृष्टरूप से विद्यमान है।

यहाँ चैतन्यचमत्कार जयवंत वर्तता है वह इस कथन में जो चैतन्यचमत्कार का सर्वोत्कृष्ट होना बताया है, वही मंगल है।

अपने स्वभावरूप सहज-तेज पुंज में तीनलोक के पदार्थ मग्न हो जाते हैं, इसलिये अनेक भेद होते हुये दिखाई देने पर भी उसका स्वरूप एक ही है।

अहा ! केवलज्ञान में सर्वपदार्थ झलकने से वे अनेक ज्ञेयाकाररूप दिखाई देते हैं तो भी वस्तुतः ज्ञान ज्ञानाकार ही है, ज्ञेयाकार रूप नहीं हुआ। अनेक को जानता हुआ भी ज्ञान एकरूप ही रहता है। लोकालोक को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय ज्ञानरूप ही रहती है; क्योंकि वह आत्मा की स्वयं की पर्याय है, उसमें पर ज्ञेयों का प्रवेश नहीं हुआ है।

प्रवचनसार गाथा 172 की टीका के 9वें बोल में आया है कि उपयोग का किसी से हरण नहीं होता। एकबार शुद्धात्मा के आश्रय से जो उपयोग प्रकट हुआ उसका किसी से नाश नहीं होता। द्रव्यस्वभाव का नाश हो तो उसके आश्रय से प्रकट हुये उपयोग का भी नाश हो जाये; किन्तु ऐसा होता नहीं है।

अहा ! जिस भगवान आत्मा ने अपने एक ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि और रमणता की पूर्णता प्राप्त कर ली, वह पुनः नीचे नहीं गिरता और साधकदशा को प्राप्त नहीं होता; क्योंकि सिद्धपद कभी छिदता नहीं, वह तो अक्षयअनंत ही होता है।

केवलज्ञान ज्योति अनंतवीर्य से सदा निष्कंप एकरूप रहती है। ऐसा यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यचमत्कार वर्तता है। जहाँ केवलज्ञानादि सदा निष्कंप वर्तते हैं वह ऐसा चैतन्यचमत्कार प्रभु तू स्वयं है। अहा ! सादि-अनंत समाधिसुख में अपने चैतन्य के वर्तनरूप सिद्धपद सदा जयवंत वर्तो।

अब आगामी 276 वें काव्य में टीकाकार अपना नाम प्रकट करते हैं वह

(मालिनी)

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-

न्यनवरतनिमग्नं धारयद् ध्वस्तमोहम् ।

उदितममृतचंद्रज्योतिरेतत्समंता-

ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ॥

(दोहा)

मोह रहित निर्मल सदा अप्रतिपक्षी एक ।
अचल चेतनारूप में मग्न रहे स्वयमेव ॥
परिपूरण आनन्दमय अर अद्भुत उद्योत ।
सदा उदित चहुँ ओर से अमृतचन्द्रज्योति ॥

जो अचल चेतनास्वरूप आत्मा में आत्मा को अपनेआप ही निरन्तर निमग्न रखती है अर्थात् प्राप्त किये गये स्वभाव को कभी नहीं छोड़ती, जिसने मोह का नाश किया है, जिसका स्वभाव निःसपत्न (प्रतिपक्षी कर्मों से रहित) है, जो निर्मल है और पूर्ण है, ऐसी यह उदय को प्राप्त अमृतचन्द्र ज्योति (अमृतमय चन्द्रमा के समान ज्योति, ज्ञान, आत्मा) सर्वथा जाज्वल्यमान रही ।

जिसका न तो मरण होता है और न जिससे दूसरे का नाश होता है, वह अमृत है और जो अत्यंत स्वादिष्ट होता है, उसे लोग रूढ़ि से अमृत कहते हैं । यहाँ ज्ञान को, आत्मा को, अमृतचन्द्र ज्योति को कहा है, जो कि लुप्तोपमालंकार है; क्योंकि **अमृतचन्द्रवत् ज्योतिः** का समास करने पर वत् का लोप होकर **अमृतचन्द्रज्योतिः** शब्द बनता है ।

यदि वत् न रखकर **अमृतचन्द्ररूप ज्योति** अर्थ किया जाये तो भेदरूपक अलंकार होता है और **अमृतचन्द्ररूपज्योति** ही आत्मा का नाम कहा जाये तो अभेदरूपक अलंकार होता है ।

आत्मा को अमृतमय चन्द्रमा के समान कहने पर भी यहाँ कहे गये विशेषणों द्वारा आत्मा का चन्द्रमा के साथ व्यतिरेक भी है; क्योंकि **ध्वस्तमोह** विशेषण अज्ञान-अंधकार का दूर होना बतलाता है, **विमलपूर्ण** विशेषण लांछन रहितता तथा पूर्णता बतलाता है । **निःसपत्नस्वभाव** विशेषण राहू बिम्ब एवं बादल आदि से आच्छादित न होना बतलाता है और **समंतात् ज्वलतु** सर्व क्षेत्र और सर्वकाल में प्रकाश करना बतलाता है; चन्द्रमा ऐसा नहीं है ।

इस श्लोक में टीकाकार आचार्यदेव ने अपना **अमृतचन्द्र** नाम तो बताया ही है साथ ही यह भी बताया है कि समास बदलकर अर्थ करने से **अमृतचन्द्र** और **अमृतचन्द्रज्योति** के अनेक अर्थ होते हैं । उन सबको यथासंभव जानना चाहिये ।

(क्रमशः)

ज्ञान गौरी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : स्व-परप्रकाशक ज्ञान को प्रमाण कहा है, वह किसप्रकार है; क्योंकि छद्मस्थ के तो कही भी स्व-पर का एकसाथ उपयोग होता नहीं ?

उत्तर : प्रमाण को स्व-परप्रकाशक कहा है । वहाँ स्व और पर दोनों में एकसाथ उपयोग होने की बात नहीं है; किन्तु जिस ज्ञान ने स्व को स्वरूप से और पर को पररूप से जाना है; वह सम्यग्ज्ञान प्रमाण है; इसप्रकार उसका स्व-परप्रकाशकपना समझना । अवधि-मनःपर्यय का उपयोग तो पर में ही होता है, तथापि वे भी स्व को स्वपने और पर को परपने जानते हैं, इसलिये प्रमाण हैं । छद्मस्थ का उपयोग तो जब स्व में होता है, तब पर में नहीं होता और पर में हो तब स्व में नहीं होता; तथापि प्रमाणरूप सम्यग्ज्ञान तो ज्ञानी के सदैव वर्तता है । पर को जानतेसमय भी 'मैं ज्ञान हूँ' ऐसा आत्मभान मिटता नहीं और यही ज्ञान की प्रमाणता है ।

प्रश्न : नयों को इन्द्रजाल क्यों कहा है ?

उत्तर : नयों में अनेकप्रकार की अपेक्षायें आती हैं, उनके द्वारा वस्तु में विद्यमान कथंचित् परस्पर विरुद्ध धर्म बताये जाते हैं । जो स्याद्वाद से उनका सच्चास्वरूप नहीं समझता, उसे इन्द्रजाल जैसी उलझन लगती है । जैसे - एक नय द्रव्य को नित्य कहता है, दूसरा नय उसे अनित्य कहता है; एक नय द्रव्य को एकरूप कहता है, दूसरा नय अनेकरूप कहता है; एक नय द्रव्य को सत् कहता है, दूसरा नय असत् कहता है; एक नय क्रिया से मुक्ति कहता है, दूसरा नय ज्ञान से मुक्ति कहता है; एक नय कर्म-नोकर्म को व्यवहार कहकर राग को निश्चय कहता है और एक नय उसी राग को व्यवहार कहकर निर्मल पर्याय को निश्चय कहता है तथा एक नय निर्मल पर्याय को व्यवहार कहकर त्रिकाली ध्रुव द्रव्य को निश्चय कहता है । इसप्रकार नय वस्तु के अनेक धर्मों को अनेक अपेक्षाओं से बतलाते हैं । इन्हें जो यथार्थ न समझे उसे इन्द्रजाल जैसी उलझन मालूम होती है । वास्तव में तो नय वस्तु के स्वरूप का अनेकान्तपना बतलाकर सम्यक्-

एकान्त ऐसे त्रिकाली ध्रुव सामान्यद्रव्य का आश्रय कराते हैं और यही नयों को जानने का मूल प्रयोजन है।

प्रश्न : इतने सब नयों से आत्मा को जानने का क्या काम है ? मात्र 'आत्मा है' ह्व ऐसा जान लेने से काम नहीं चल सकता क्या ?

उत्तर : भाई ! 'आत्मा है' ह्व ऐसा तो लगभग सभी कहते हैं; परन्तु आत्मा में जैसे अनन्त धर्म हैं, वैसे ही धर्मों से उसे पहचाने, तो ही आत्मा को जाना कहा जाये। 'आत्मा है' ह्व ऐसा कहे; किन्तु उसके अनन्त धर्म जिस रीति से हैं, उस रीति से न जाने तो उसने आत्मा को जान लिया ह्व ऐसा नहीं कह सकते।

प्रश्न : विकल्पनय में आत्मद्रव्य को बालक, कुमार और वृद्ध जैसे एक पुरुष की तरह सविकल्प कहा है। वहाँ विकल्प का अर्थ क्या समझना चाहिये ?

उत्तर : वहाँ विकल्प का अर्थ भेद है, अन्य नहीं। जैसे एक पुरुष में बालक, कुमार और वृद्ध ऐसे भेद पड़ते हैं; वैसे ही भेदनय से आत्मा गुण-पर्याय के भेदवाला है। वस्तु में अनन्तगुण हैं, उनमें परस्पर कथंचित और क्रमसर होनेवाली उनकी पर्यायों में भी परस्पर भेद है। वस्तु में दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि जो भेद हैं, उन्हें विकल्प कहा है। एक आत्मा ही एकसमय में भेदवाला है और वह उसका एक धर्म है।

प्रश्न : जिसप्रकार अस्तित्वधर्म वस्तु का अपना है, उसीप्रकार नास्तित्वधर्म भी क्या वस्तु का अपना ही है ?

उत्तर : जो आत्मद्रव्य अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तित्ववाला है, वही आत्मद्रव्य पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्तित्ववाला है। पर से न होनापना भी वस्तु का ही एक अंश है। वस्तु में जहाँ भाव अंश है, वहाँ ही अभावअंश भी है; जहाँ स्व से अस्तित्व धर्म है, वहीं पर से नास्तित्वरूप धर्म भी साथ ही है; एक ही अंशी के दो अंश हैं। नास्तित्वधर्म भी अपना ही अंश है। नास्तित्वधर्म स्वयं कहीं वस्तु में अभावरूप नहीं है, किन्तु सत् है। इस धर्म में 'पररूप से नहीं' ह्व ऐसी पर की अपेक्षा भले ही आवे, किन्तु वह नास्तित्वधर्म कहीं पर के आधार से अथवा पर का नहीं है, वह धर्म तो वस्तु का अपना ही है। वह भी स्वज्ञेय का अंश है, यदि उसे न माना जावे तो सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति नहीं हो सकती। ●

'भारतीय दर्शनों में अहिंसा' विषय पर संगोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर तथा त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान, कोटा के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 21 से 23 फरवरी, 2005 तक भारतीय दर्शनों में अहिंसा विषय पर त्रिदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

21 फरवरी को राज. विश्वविद्यालय के सीनेट हॉल में प्रथम सत्र की अध्यक्षता श्री महावीर राज गैलडा, लाडनू ने की। मुख्य अतिथि प्रो. एस. आर. व्यास, नई दिल्ली तथा विशिष्ट अतिथि श्री दौलत डागा व डॉ. टी.सी. कोठारी, नई दिल्ली थे। मुख्य वक्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर एवं डॉ. दयानन्द भार्गव, जोधपुर थे। विषय का प्रवर्तन डॉ. पी.सी. जैन ने किया।

इस अवसर पर डॉ. भारिल्ल ने अपने मार्मिक उद्बोधन कहा कि जैनदर्शन में तो अहिंसा को बहुत ही व्यापकरूप से परिभाषित किया गया है। यहाँ बाहरी हिंसा के त्याग की ही नहीं; अपितु रागादि भावोंरूप अंतरंग हिंसा के त्याग की उत्कृष्ट चर्चा की गई है। साथ ही डॉ. दयानन्दजी भार्गव व डॉ. टी.सी. कोठारी ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

उद्घाटन सत्र के पश्चात् संगोष्ठी में आये हुये सभी विद्वानों को पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा सत्साहित्य भेंटकर सम्मानित किया गया। श्री कुन्दकुन्द भवन भट्टारकजी की नसियाँ में द्वितीय सत्र की अध्यक्षता डॉ. भारिल्ल ने की।

22 फरवरी को प्रथम सत्र की अध्यक्षता पण्डित प्रभुदयालजी कासलीवाल एवं द्वितीय सत्र की अध्यक्षता पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने की।

समापन समारोह की अध्यक्षता प्रो. सत्यदेव मिश्र कुलपती राज. संस्कृत वि.वि. ने की।

अन्त में डॉ.पी.सी. जैन ने संगोष्ठी का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुये बताया कि संगोष्ठी में डॉ. राजारामजी आरा, डॉ. भागचन्दजी भागेन्दु दमोह, डॉ. धर्मचन्दजी जैन कुरुक्षेत्र, डॉ. प्रेमसुमनजी जैन, डॉ. श्रीयांसजी सिंघई आदि 122 विद्वानों ने 7 सत्रों में 109 पत्र पढ़े तथा सर्वसम्मती से शेष 13 पत्र पढ़े गये मान लिये गये। इस अवसर पर अहिंसा ग्राम स्वराज और समग्र क्रान्ति यज्ञ के पुरोधा श्री सिद्धराजजी ढड्डा का प्रशस्तिपत्र आदि द्वारा सम्मान किया गया। **ह्व डॉ. पी. सी. जैन**

शिलान्यास समारोह सानन्द सम्पन्न

इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ श्री दि. जैन कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय भवन का शिलान्यास समारोह दिनांक 26-27 फरवरी, 2005 को सम्पन्न हुआ।

26 फरवरी को सम्मेलनविधान के पश्चात् पण्डित धनसिंहजी पिडावा के प्रवचन का लाभ मिला। 27 फरवरी को श्री कनकबेन अनंतराय अमोलकचन्द सेठ मुम्बई एवं श्री मुकेश जैन सुपुत्र श्री राजेश जैन स्व. श्रीमती सन्तोषबेन देवलाली के करकमलों से शिलान्यास विधि सम्पन्न हुई।

इस अवसर पर स्थानीय विद्वानों का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद ने सम्पन्न कराये। सभी कार्यक्रम पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा के निर्देशन में सम्पन्न हुये। समारोह में श्रीमती श्रीकान्ताबेन पूनमचन्दजी छाबड़ा द्वारा **ऐसे क्या पाप किये** पुस्तक की प्रतियाँ सभी को वितरित की गई।

विद्वान एवं कार्यकर्ता सम्मेलन

शिरपुर (वाशिम-महा.) : श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ तीर्थक्षेत्र शिरपुर स्थित दिगम्बर जैन निकलंक धर्मशाला में दिनांक 27 फरवरी, 2005 को महाराष्ट्र प्रांत तत्त्वप्रचार-प्रसार योजना का द्वितीय विद्वान एवं कार्यकर्ता सम्मेलन सम्पन्न हुआ; जिसमें 30 विद्वान एवं 70 कार्यकर्ताओं द्वारा विगत 1 वर्ष की गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री माणिकचन्दजी बज, वाशिम ने की। मुख्यअतिथि श्री सुभाषजी अजमेरा अकोला थे। विशिष्ट विद्वानों के रूप में बाल ब्र. केशरीचन्दजी 'धवल' छिन्दवाड़ा एवं पण्डित अशोककुमारजी लुहाड़िया अलीगढ़ भी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन पण्डित नन्दकिशोरजी मांगुलकर काटोल तथा आभार प्रदर्शन पण्डित गुलाबचन्दजी बोरालकर ऐलेरा ने किया।

- सुदीप जैन

जैनमंदिर पर डाक विभाग द्वारा विशेष कवर

सतना (म.प्र.) : भारतीय डाक विभाग द्वारा सतना में आयोजित डाक टिकिट प्रदर्शनी सतनापेक्स-05 के दौरान जैनधर्म संबंधी एक विशेष कवर तथा विशेष केंसिलेशन जारी किया गया।

सतना में स्थित दिगम्बर जैन मंदिर की स्थापना के 125 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में जारी इस विशेष कवर पर सतना नगर के सबसे प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर का सुन्दर चित्र तथा इस मंदिर के मूलनायक श्री 1008 नेमिनाथ भगवान की मूर्ति के चित्र मुद्रित हैं। मन्दिर की स्थापना माघ सुदी 5, विक्रम संवत् 1937 (सन् 1880) को हुई थी। लगभग उसी समय सतना शहर भी अस्तित्व में आया था। यह मंदिर सतना नगर का प्रथम पूर्ण विकसित शिखरबद्ध मंदिर है।

प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा 'पत्राचार प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' प्रारंभ किया जा रहा है। यह सत्र 1 जुलाई, 2005 से प्रारंभ होगा। इसमें प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भाषाओं/विषयों के प्राध्यापक अपभ्रंश, प्राकृत शोधार्थी एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र दिनांक 25 मार्च से 15 अप्रैल, 2005 तक अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-302004 से प्राप्त करें। कार्यालय में आवेदन पत्र पहुँचने की अंतिम तिथि 15 मई 2005 है।

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन प्रतिदिन प्रातः 6.35 बजे अवश्य सुनें।

साधना चैनल आपके यहाँ न आता हो तो श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से मोबाइल नं. 09312506419 पर सम्पर्क करें।

हार्दिक बधाई !

1. सुजानगढ़ (राज.) : श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धा. महाविद्यालय, जयपुर के 4 बैच के स्नातक डॉ. अरविन्दकुमारजी जैन वरिष्ठ अध्यापक सुजानगढ़ (राज.) को जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूँ द्वारा **समयसार का दार्शनिक परिशीलन** विषय पर पीएच. डी. की उपाधि प्रदान की गई। शोध कार्य के निर्देशक डॉ. जिनेन्द्र जैन, लाडनूँ थे।

भगवान महावीर दि. जैन विद्वत् समिति के महामंत्री डॉ. अरविन्दजी के अनुसार यह शोधकार्य शिक्षागुरु डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के चिन्तन की सुप्रभावना का एक लघु सुफल है।

2. जयपुर (राज.) : यहाँ के प्रसिद्ध सुलतान हाउस के विशाल प्रांगण में राजस्थान दिवस की पूर्व संध्या पर श्री शारदा पीठाधीश्वर सीतारामदासजी महाराज की अध्यक्षता तथा राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश माननीय श्री करणीसिंहजी राठौड के आतिथ्य में राष्ट्रीय समता स्वतंत्र मंच द्वारा श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धा. महाविद्यालय के स्नातक डॉ. विमलकुमारजी जैन को उनके सामाजिक, धार्मिक, पत्रकारिता एवं साहित्यिक क्षेत्र में शोधपूर्ण कार्य एवं उल्लेखनीय सेवाओं के लिये समरसता स्वर्ण पदक प्रदान कर सम्मानित किया गया।

इसी अवसर पर डॉ. जैन की मौलिक कृति अरुणोदय एवं मां के अंचल से का विमोचन किया गया। आपने अब तक 35 पुस्तकों का लेखन व सम्पादन किया है, साथ ही आप ॐ ज्योति पुंज मासिक पत्रिका के सफल सम्पादक भी हैं। ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व भारत के विभिन्न नगरों में भी आपको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

आपको इन उपलब्धियों के लिये वीतराग-विज्ञान और महाविद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

डाक टिकिट भेजकर सत्साहित्य निःशुल्क मंगा लें

श्रीमद्भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत नियमसार ग्रन्थ की मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव कृत समयव्याख्या, प्रवचनसार की आचार्य अमृतचन्द्र कृत तत्त्वप्रदीपिका एवं पंचास्तिकाय ग्रन्थ की समयव्याख्या टीका में समागत कलशों का हिन्दी पद्यानुवाद (मूल श्लोकों एवं अन्वयार्थ सहित) नियमसार कलश, पृष्ठ 241, मूल्य: 10 रुपये, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री द्वारा लिखी गई क्रमबद्धपर्याय निर्देशिका (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत 'क्रमबद्धपर्याय' के अध्यापन हेतु सहायक पुस्तक) पृष्ठ 128, मूल्य : 11 रुपये तथा क्रिया-परिणाम और अभिप्राय : एक अनुशीलन, पृष्ठ 103, मूल्य: 10 रुपये।

उक्त तीनों पुस्तकें श्री देवांगभाई और मलयभाई मियामी (यू.एस.ए.) की ओर से मंदिरों, संस्थाओं, त्यागियों, मुमुक्षुओं को स्वाध्यायार्थ निःशुल्क भेंट दी जा रही है। इच्छुक महानुभाव 6/- के फ्रेश डाक टिकिट भेजकर मंगा लें। अन्तिम तिथि 31 मई, 05 है।

पता : निःशुल्क साहित्य वितरण विभाग,

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015

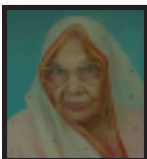


1. **इन्दौर निवासी** डॉ. राजेश जैन की धर्मपत्नी स्वनामधन्य श्रीमती सन्तोष देवी जैन ने इस नश्वर देह को दिनांक 14 फरवरी, 2005 को अत्यन्त समतापूर्वक त्याग दिया। आपने 12 वर्ष पूर्व 13 फरवरी 1993 को श्रवण बेलगोला में सल्लेखना व्रत अंगीकार किया था; जिससे ठीक 12 वर्ष बाद ही इस नश्वर शरीर का त्याग कर देवलोक गमन हुआ।

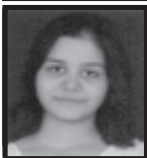
वे इस व्रत का अनुपालन उत्साह एवं प्रसन्नचित्त से करती रहीं तथा उन्होंने देव-शास्त्र-गुरु की सच्ची समझपूर्वक अपने जीवन की समस्त चर्याओं को उज्वल बनाये रखा। उनके सुपुत्र मुकेश जैन का इस भौतिकवादी युग में अपनी माताजी के चरण चिन्हों पर चलना यह दर्शाता है कि उन्होंने अपने पुत्रों पर कितना अमिट प्रभाव छोड़ा है। अन्तिम समय में अरहंत-सिद्ध के अनवरत उच्चारण सहित पूर्ण जागृत अवस्था में आपका देहावसान हुआ। धर्मप्राण पति राजेश जैन, पुत्र मुकेश एवं शैलेश आदि सभी ने चारों प्रकार के दान में कुल 1 करोड़, 11 लाख, 11 हजार, 111 रुपये की न्योछावर राशि समाज एवं धर्म को समर्पित करने की घोषणा की।

आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक को संरक्षक के रूप में पाँच हजार रुपये तथा वीतराग-विज्ञान को परम संरक्षक के रूप में 11 हजार रुपये प्राप्त हुये हैं।

2. **किशनगढ़ निवासी** स्व.श्री लादूलालजी पहाड़िया की धर्मपत्नी स्व. पण्डित नेमीचन्दजी पाटनी की बहिन श्रीमती फूलबाई पहाड़िया का 19 मार्च, 2005 को 92 वर्ष की आयु में शांत परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया है। आप जीवन पर्यंत गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं उनके तत्त्वज्ञान से जुड़ी रहीं। ज्ञातव्य है कि जयपुर-खानियां तत्त्वचर्चा में भी आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा। आपकी स्मृति में आपके सुपुत्र श्री सुशीलजी पहाड़िया की ओर से 2001/- रुपये प्राप्त हुये।



3. **कलकत्ता निवासी** श्री फूलचन्दजी, राजमलजी, भागचन्दजी, कमलकुमारजी पाटनी की माताजी श्रीमती सोनीदेवी पाटनी का दिनांक 31 मार्च, 2005 को 102 वर्ष की आयु में अत्यन्त शांत परिणामों से देहावसान हो गया है। आप सरलस्वभावी, स्वाध्यायप्रिय एवं धार्मिक महिला थीं।



4. **बजाजनगर-जयपुर निवासी** कु. रवीना जैन (नन्नी) सुपुत्री डॉ. रवी-प्रमिला जैन का 12 फरवरी, 05 को 17 वर्ष की अल्पायु में दुर्घटना (रोड एक्सिडेंट) होने से देहावसान हो गया है। आपकी स्मृति में आपके दादाजी श्री पदमचन्दजी जैन कठूमरवालों की ओर से 501/- रुपये प्राप्त हुए।

5. **सरदारशहर निवासी** श्री जसकरणजी की धर्मपत्नी श्रीमती सुशीलाजी सेठिया का 3 मार्च, 05 को अल्पायु में ही शांत परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया है। बचपन से ही धार्मिक संस्कार होने से आपका जीवन संयममय रहा। आपकी स्मृति में 1001 /- रुपये प्राप्त हुये।

6. **राजकोट निवासी** श्रीमती शारदाबेन रतिलालजी का दिनांक 15 फरवरी, 05 को देहावसान हो गया है। आपका सम्पूर्ण जीवन गुरुदेवश्री एवं उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के सान्निध्य में ही व्यतीत हुआ। आप राजकोट दिग. जैन महिला मण्डल की संस्थापक थीं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों ह्व यही हमारी मंगल कामना है।